Toppersnotes
Unleash the topper in you

UP – PGT

स्नातकोत्तर शिक्षक

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड

संस्कृत

भाग – 1

SIERRA INNOVATIONS

विषय सूची

भाग – 1

क्र.स.	विषयवस्तुः	पृष्ठ सं.
1.	गद्य / पद्य ग्रथ एवम् ग्रन्थ रचनाकार (कादम्बरी, (कथामुखम), नलचम्पू (प्रथम उच्छवास), शिशुपाल बधम् (प्रथम सर्ग), अभिज्ञान शाकुन्तलम और मृच्छकटिकम, गद्यकाव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य एवं नाट्यकाव्य के उद्भव और विकास का सामान्यस परिचय)	1
2.	संस्कृत वाङमय में प्रतिविम्बित भारतीय दर्शन	40
3.	काव्यशास्त्र (काव्य लक्षण, प्रयोजन, शब्दवृत्तियां, ध्वनि, रस एवं निम्नलिखित अलंकारों का परिज्ञानदृअनुप्रास, यमक श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान्, अतिशयोक्ति, स्वभोक्ति विरोभास तथा पारिसंख्या)	54
4.	संस्कृत भाषा का उद्भव और विकास	81
5.	वर्ण विचार	124

गद्यकवि बाणभट्ट

संस्कृत साहित्य के रचनाकारों में महाकवि बाणभट्ट ही उन प्रतिष्ठित कवियों में हैं जिनका विस्तृत जीवन परिचय हमें उनके शब्दों में ही मिलता है। ये वात्स्यायन वंश के वैदिक कर्मकाण्डी पण्डित कुबेर के घर जन्मे।इनके पूर्वज शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट नगर में निवास करते थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाणभट्ट का एक पुत्र भूषणभट्ट हुआ कहीं कहीं इसका नाम पुलिन्दभट्ट भी मिलता है। शैशवकाल में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था और 14 वर्ष की आयु तक इनके पिता की भी मृत्यु हो गई थी। ये समृद्ध परिवार से थे युवावस्था में मित्रमण्डली के साथ स्वयं ही संसार भ्रमण के लिए निकल गए। इन्हो ने अनेक देशों की यात्रा कर विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया जिसका प्रभाव इनकी कृतियों पर स्पष्ट दिखाई पडता है।

बाणभट्ट के स्थितिकाल के विषय मे किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है क्योंकि हर्षचरित में अपने विषय में बताते हुए इनका कथन है कि ये सम्राट् हर्षवर्धन के समकालीन और सभापण्डित थे। हर्षवर्धन का शासनकाल 606-648 ई0 ऐतिहासिक सन्दर्भों के आधार पर प्रामाणिक है। अतः इस आधार पर विद्वानों द्वारा महाकवि बाण का समय सातवीं शताब्दी ई0 पू0 स्वीकृत है।

गद्यकार बाण की दो प्रसिद्ध रचनाएं हर्षचरित और कादम्बरी को विद्वानों ने एक मत से स्वीकारा है। इनके अतिरिक्त चण्डीशतक, मुकुटताडितक, पार्वतीपरिणय और पद्य कादम्बरी को भी कुछ विद्वानों ने बाण की रचना माना है किन्तु भाषा और भाव की दृष्टि से इन्हें निर्विवाद रूप से बाण की रचना नहीं माना जा सकता।

हर्षचरित - यह बाण की प्रारम्भिक रचना है और गद्य के भेद आख्यायिका के अन्तर्गत आती है। इसमें आठ उच्छवास हैं। प्रथम दो उच्छवासों में अपना जीवन परिचय और अपने पूर्ववर्ती कवियों के विषय में बताया है। शेष छः उच्छवासों में अपने आश्रयदाता और तत्कालीन राजा हर्षवर्धन के पूर्वजों का वर्णन करते हुए उनके जन्म से लेकर उनकी बहन राज्यश्री की प्राप्ति तक का वर्णन रोचक शैली में किया है। अष्टम उच्छवास में ग्रन्थ की अचानक समाप्ति ग्रन्थ की अपूर्णता को बताती है। इस सम्बन्ध में बाण ने स्वयं ही प्रारम्भ में कहा है कि हर्ष के जीवन का वर्णन सैकडों जीवन में भी नहीं किया जा सकता यदि उसका एक अंश सुनना चाहते है तो मैं बता सकता हूँ। इस प्रकार हर्षचरित राजा हर्ष के जीवन की एक घटना

है जिसमें बाण ने हर्ष की प्रस्थान करती हुई सेना का, राज्यसभा का तथा ग्रामों आदि का सुन्दर वर्णन किया है। अतः यह ऐतिहासिक कथानक वाला उपन्यास है।

कादम्बरी- यह संस्कृत गद्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना और बाणभट्ट की विशिष्ट कृति है। यह गद्य काव्य के कथा भेद के अन्तर्गत आती है। इसमें चन्द्रापीड और वैशम्पायन एवं कादम्बरी और 1 महाश्वेता के तीन जन्मों की कथा का वर्णन है। यह दो भागों में विभक्त है- पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। महाकवि बाण अपने जीवनकाल में इसे पूर्ण नहीं कर पाए, माना जाता है कि उनके योग्य पुत्र भूषणभट्ट ने इसे पूर्ण किया। इस प्रकार उत्तरार्द्ध भाग को भूषणभट्ट द्वारा रचित माना जाता है। कादम्बरी का एक अत्यन्त लघु अंश शुकनासोपदेश विद्वानों द्वारा प्रशंसित और चर्चित है। इसमें विनम्र चन्द्रापीड के माध्यम से जीवन के व्यावहारिक ज्ञान का परिचय कराया है, मन्त्री शुकनास द्वारा अत्यन्त मार्मिक, सारगर्भित और विशिष्ट गुणों से युक्त उपदेश दिया गया है। कादम्बरी की कथा का प्रमुख केन्द्र सात्विक प्रेम रहा है, भाव, भाषा एवं कल्पना की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इसका कथा प्रवाह इस प्रकार है कि इसमें रस लेने वालों के लिए कही गई यह उक्ति उचित प्रतीत होती है- कादम्बरी रसज्ञानामाहारो अपि न रोचते।
बाण की शैली के विषय में हर्षचरित के प्रथम उच्छवास में अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं उन्हो ने कहा है-

नवो अर्थो जातिरग्राम्या श्लेषो अशिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ --- हर्षचरित 1.8

अर्थात् विषय की नवीनता, कल्पना की मौलिकता, रोचक स्वभावोकित, स्पष्ट श्लेष, रस की सहज अनुभूति और दृढबन्धयुक्त पदावली - ये सभी विशेषताएं एक स्थान पर मिलना बहुत कठिन है। बाण की कृतियों के अध्ययन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि बाण की रचनाओं में ये सभी सहजता से विद्यमान है।
विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना गद्यकवि बाण की विशेषता है इसीलिए कहीं लम्बे समासों का प्रयोग तो कहीं समासरहित भाषा की सरलता दिखाई देती है। शुकनासोपदेश में लक्ष्मीवर्णन के अन्तर्गत भाषा का सरल रूप दर्शनीय है-
"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। ... .।"

बाणभट्ट पांचाली रीति के कवि हैं जो मधुर और कोमल पदों से युक्त होती है। वर्ण्य विषय के अनुरूप वे प्रसादगुणयुक्त वैदर्भी और समास की बहुलता वाली गौडी रीति का भी बडी कुशलता से प्रयोग करते हैं।

अलंकार अर्थ की अभिव्यक्ति और रस की अनुभूति में विशिष्टता प्रदान करते हैं। बाण की कृतियों में अनुप्रास, यमक, दीपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। जैसे शुकनासोपदेश में –
अप्रत्ययबहुला .... उन्मत्तीकरोति । इस अनुच्छेद में श्लेष के माध्यम से उपमा का चमत्कार दर्शाया है।

अनुप्रास अलंकार का उदाहरण–
इयं हि संवर्द्धन वारिधारातृष्णाविषवल्लीनां, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणां, परामर्शधूमलेखा 2–सच्चरित–चित्राणाम् ----- प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका काम- करिणः.........। शुक0

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी बाणभट्ट की कुशलता दोनों कृतियों में दिखाई देती है। वे पात्रों के मन के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण कर उन्हें प्राणवान् सा प्रस्तुत करते हैं। कादम्बरी में उनके पात्र केवल भूलोक के प्राणी न होकर अनेक लोकों से सम्बन्धित हैं जैसे – चन्द्रमा का अवतार होने से चन्द्रापीड चन्द्रलोक से, कादम्बरी, महाश्वेता आदि गन्धर्वलोक से और पुण्डरीक, कपिंजल आदि दिव्यलोक से सम्बन्धित हैं।
प्रकृति के मनोहारी चित्रण में भी बाणभट्ट सिद्धहस्त हैं। वन, पशु, पक्षी, पर्वत, सरोवर आदि के उन्मुक्त वातावरण का आकर्षक चित्रण इनकी कृतियों में मिलता है। प्रकृति के कठोर एवं कोमल दोनों पक्षों का उत्कृष्ट चित्रण कादम्बरी के विन्ध्याटवी वर्णन में द्रष्टव्य है।

रसों का राजा श्रृंगाार बाण का प्रिय रस है अतः कादम्बरी का प्रधान रस श्रृंगार है । इसके दोनों ही पक्ष संयोग और वियोग का अद भुत समन्वय कादम्बरी में मिलता है। अन्य रस अंग रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जाबालि के आश्रम वर्णन में शान्त रस, शबरसेना वर्णन में भयानक और वीभत्स रस और चन्द्रापीड की मृत्यु पर कादम्बरी की मनोदशा वर्णन में करुण रस आदि का आकर्षक वर्णन मिलता है।

बाण के विषय में गोवर्धनाचार्य की यह उक्ति उल्लेखनीय है –

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।

प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

अर्थात् जैसे प्राचीन काल में शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी, उसी प्रकार प्रौढ़ता को पाने के लिए वाणी ही बाण बन गई।

इस प्रकार काव्य प्रतिभा के धनी बाणभट्ट के दीर्घकालिक और गम्भीर अध्ययन का ही परिणाम है उनकी दोनों कृतियाँ। उनकी कृतियों में काव्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, मीमांसा, न्याय, ज्योतिष, वेद वेदांग, इतिहास, राजनीति, पुराण, आयुर्वेद, तथा अनेक कलाओं का ज्ञान पद पद पर दिखाई देता है। अतः इनके विषय में कही गई उक्ति ''बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'' सर्वथा उपयुक्त है। इस उक्ति का शाब्दिक अर्थ है- सम्पूर्ण काव्य जगत् बाण की जूठन है अर्थात् कोई विषय ऐसा नहीं जो बाण के काव्य में प्रयुक्त न हुआ हो।

नलचम्पू का उद्भव एवं विकास

वेदकाल से लेकर सदीओं पुरानी होते हुए भी नलकथा हमेशां से प्रिय और प्रसिद्ध रही है ।
त्रिविक्रम भट्टजीने इस नलकथा की प्रेरणा महाभारत से पाई जाने की संभावना है। महाभारत के वनपर्व के अध्याय 52 से 79 तक यह नलकथा का वर्णन है। वन में गये हुए युधिष्ठिर को बृहदश्वने नलोपाख्यान कहा है। नलचम्पू में वर्णित कथानक मात्र 53 से 56 चार अध्याय में ही समाविष्ट हो जाता है ।

नलचम्पू में वस्तु का फलक संक्षिप्त है। वैसे भी चम्पू में कथानक से ज्यादा वर्णन की ओर अभिरुचि रहती है । उसमें भी बाणभट्ट को किसी कविने अपने आदर्श के रूप में स्वीकार कीया तब तो कथाप्रवाह मन्द ही हो जाता है। ऐसे उदाहरण गद्य में नहीं पद्य मेँ भी पाये गयें हैं । यहां भी कथाप्रवाह मेँ वस्तु का संविधान प्रसंगो से ज्यादा वर्णनों से किया गया है। नलचम्पू

सात उच्छ्वासों में विभकत है। इसमें प्रथम तीन उच्छुवास में निम्नलिखित प्रसंगो का आलेखन है ।
प्रथम उच्छुवासमें (4) त्रिविक्रम का वंशपरिचय (2) आर्यावर्त का वर्णन (3) आर्यावर्त के निवासीओं का सुख (4) निषध जनपद (5) निषधानगरी का वर्णन (6) नल वर्णन (7) नल का व्यावहारिक जीवन (8) वर्षावर्णन (9) मृगया के बाद उजडे हुए वन का वर्णन (10) कामविह्वल नल का वर्णन और, द्वितीय उच्छ्वास में (1) वर्षा के बाद आई हुई शरदऋतु का वर्णन (2) वनपालिका द्वारा विहारवन का वर्णन (3) हंस द्वारा किये गयें दक्षिणदेश और कुंडिनपुर के वर्णन (4) भीम और प्रियंगुमञ्जरी तथा दमयन्ती के वर्णन (5) चन्द्रिका वर्णन तृतीय उच्छुवास में (1) प्रभातवर्णन (2) मध्याहनवर्णन (3) राजा भीमदेव के स्नान, आहार आदि का वर्णन (4) प्रियंगुमञ्जरी की सगर्भावस्था, कन्याजन्म (5) दमयन्ती का शैशव, शिक्षण और तारुण्य का वर्णन यहाँ प्रसंगो से ज्यादा वर्णन देखे जातें है। अलबत्त, कवि का साफल्य है कि प्रचूर वर्णन कभी कथाप्रवाह में बाधक नहीं बनते। वर्णनालेखन और प्रसंगालेखन में त्रिविक्रम भट्ट आयोजनपूर्वक आगे चल रहे है ऐसा प्रतीत होता है ।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए उसे निरन्तर संघर्ष करना पडता है। यह संघर्ष उसे अन्य व्यक्तियों से भी करना पडता है और प्रकृति से भी फलस्वरूप उसे नाना प्रकार के अनुभव होते हैं। प्रकृति के रमणीय -श्य उसे उललासित करते हैं। मानव समाज के सम्पर्क में आने पर ही उसे सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। ये सभी प्रकार की अनुभूतियाँ मानव-मानस में भावों और विचारों की वीचियाँ तरंगित कर देती हैं। इस अभिव्यक्ति का साधन बनती है वाणी।

अभिव्यक्ति में सौन्दर्य का समावेश उसे कला का रूप देता है। अभिव्यक्ति और अनुभूति का यह मणि-कहृचन योग, जब वाणी के माध्यम से अपना चमत्कार प्रदर्शित करता है, तब उसे वाङ्मय कहा जाता है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत वाङमय की धारा तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है।'

भोज ने स्वयं चम्पू-रामायण की रचना की, किन्तु उन्होंने भी चम्पू के भीतर, वाद्य और संगीत के समन्वित माधुर्य रस-श, गद्य-पद्य के मिश्रित आनन्द की ही चर्चा की, उसके विवेचन और विश्लेषण की ओर अग्रसर नहीं हुए।

संस्कृत के आचार्यों ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द या रसात्मक वाक्य को काव्य माना है। गद्य पद्यमय काव्य' को चम्पू की संज्ञा दी गई है।

काव्य की पुरूष शरीर से तुलना की है। शब्द और अर्थ काव्य पुरूष के शरीर हैं, रस आत्मा है ध्वनि प्राण है ओज, माधुर्य आदि उनके गुण है। अलंकार उसके श्रृंगार के साधन हैं, रीतियां काव्य पुरूष के आचरण और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करती है।

इन्द्रीय ग्राहिता के आधार पर काव्य के -श्य और श्रृव्य दो भेद किये जाते हैं। -श्य काव्य में रूपक और उपरूपक आते हैं, श्रृव्य काव्य के अन्तर्गत प्रबन्ध और मुक्तक आते है।

श्रृव्य काव्य में गद्य-पद्य मिश्रित शैली अपनाई जाती है। गद्य-पद्य मिश्रित शैली में निर्मित काव्य ही मिश्र काव्य कहलाता है। मिश्र काव्य का सर्वेत्कृष्ट अंग चम्पू काव्य है। चम्पू काव्य में भी अन्य काव्य भेदों की तरह रमणीयता रहती है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में चम्पू काव्यों को बहुत ही कम स्थान प्राप्त हुआ है, केवल श्रीकृष्ण माचारी ने चम्पू काव्यों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है।
संस्कृत के आचार्यों ने 'गद्यपद्यमय काव्य' को चम्पू काव्य की संज्ञा दी है।

संस्कृत के इतिहासकार इसी की आवृत्ति करते रहे।

गद्यानुबन्धरसमिश्रित पद्य सूक्ति हृद्या हि वाद्यकलया कलि तेव गीतिः।

तस्माइ धातु कवि मार्गजुषा सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया॥

गद्य सम्बन्ध के होने से पद्य सूक्तियाँ उसी प्रकार आनन्दप्रद हो जाती हैं जैसे वाद्य-यन्त्रों की सहायता से गान विद्या अधिक चमत्कारप्रद हो जाती है, अतः कवि मार्ग के अनुसरण में लगे लोगों को मानसिक सुख प्रदान करने की इच्छा से हमारी रचना चम्पू प्रबन्ध प्रस्तुत करने का यत्न करेगी।'

प्रथम चम्पूकाव्य नलचम्पू है। पन्द्रहवी शती तक मात्र बीस चम्पूकाव्य उपलब्ध होते हैं। शेष चम्पूकाव्य बाद के 250 वर्षों में लिखे गए हैं। पौराणिक चम्पूकाव्यों की संख्या सबसे अधिक है। चम्पू काव्यों के निर्माण में भक्ति-आन्दोलन और दरबारी वातावरण ने प्रभावशाली कार्य किया है।

दण्डी के समय (600-700 ई.) तक चम्पू काव्य अस्तित्व में आ चुके थे। चम्पू काव्य का बीज जातक ग्रन्थों में पाया जाता है। जातक ग्रन्थों का समय 0वीं शती से पूर्व का माना जाता है।

चम्पू काव्य की परिभाषा सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने प्रस्तुत की -

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥'

सबसे प्राचीन जो चप्पूग्रन्थ उपलब्ध होता है वह 'त्रिविक्रमभट्ट कृत 'नलचम्पू' या 'दमयन्तीचम्पू' जैन कवि 'सोमप्रभा' का यशस्तिलक चम्पू राष्ट्रकुत राजा कृष्ण के समय में 959 ई. में लिखा गया। ये दोनों चम्पूग्रन्थ ही आगे चलकर लिखे गये चप्पू ग्रन्थों के लिये आदर्श बने।

प्राचीन उपलब्ध चम्पू काव्यों में त्रिविक्रम भट्ट कृत नलचम्पू' (अपर नाम दमयन्ती चम्पू) सबसे प्राचीन और साहित्यक -ष्टि से महत्वपूर्ण कृति है। त्रिविक्रम भट्ट हैदराबाद के अन्तर्गत मान्यखेट के अधिपति राष्ट्रकूट वंश के इन्द्रराज के सभा पण्डित थे, इन्द्रराज का अभिषेकोत्सव 945 ई. में हुआ था अतः त्रिविक्रम भट्ट का समय निश्चित है, इन्हीं की दूसरी कृति मदालसा चम्पू' है। शिलालेखों के माध्यम से चम्पू काव्यशैली का विकास हुआ। गद्य काव्यों ने उसे प्रेरणा दी और 945 ई. में 'नलचम्पू' तथा 959 ई. में 'यशस्तिलक चम्पू' काव्य का निर्माण हुआ। इस प्रकार चम्पू काव्य का श्रीगणेश दसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में ही हो गया पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक गिनती के ही चम्पूकाव्य उपलब्ध होते हैं।

इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक चम्पू काव्य की सम्पूर्ण विशिष्ट प्रवृत्तियाँ एवं रचना प्रवाह की दिशा का संकेत प्राप्त हो जाता है।

रामायण-महाभारत, अन्य पुराण, ऐतिहासिक एवं आचार्यों के चरित, स्थानी देवताओं के उत्सव तथा मुख्य रूप से भागवताश्रित कथायें चम्पू काव्यों की रचना प्रेरणा स्त्रोत के रूप में प्रगट होती हैं।

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में अनेक जैन काव्यों की रचना हुई जैन चम्पूकाव्य इसी परम्परा की विविध कडियाँ हैं। वस्तुतः चम्पूकाव्यों के उत्थान में जैनाचार्यों की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।'

विजय नगर राज्य की स्थापना के उपरान्त चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल से ही वेदान्ताचार्यों का महत्व बढने लगा विजय नगर राज्य की स्थापना में सुप्रसिद्ध वेदान्ताचार्य विद्यारण स्वामी का महत्वपूर्ण हाथ है। उन्होंने स्वयं शंकराचार्य के दिग्विजय पर अनेक श्लोकों की रचना की। विजय नगर की स्थापना के उपरान्त ही वेदान्तदेशिक पुनः श्रीरंग वापस लौटे इनके तप और त्याग से रामानुज सम्प्रदाय की प्रचुर श्रीवृद्धि हुई। चम्पू काव्यों के निर्माण में वैष्णव, वेदान्तचार्यों की संख्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अनन्ताचार्य, रामानुजदास श्री निवास दास एवं वेंकटनामधारी अनेक कवियों ने चम्पू काव्य की श्रीवृद्धि में योगदान दिया, जो सभी इसी रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान अप्पय दीक्षित के परिवार से सम्बन्धित नीलकंठ आदि अनेक व्यक्तियों ने चम्पूकाव्य का सृजन किया। अन्य विद्वानों एवं कवियों के सहयोग ने संस्कृत साहित्य के हासकाल में भी, चम्पू काव्यों के द्वारा उसकी समृद्धि में योगदान किया।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से चम्पू काव्यों की रचना लगभग ढाई सौ वर्षों तक निरन्तर होती रही। उपलब्ध एवं परिगणित चम्पू काव्यों में से अधिकांश इसी काल में निर्मित हुए हैं। चम्पू काव्यों का इसे स्वर्ण युग माना जा सकता है। दो सौ से ऊपर चम्पू काव्य इसी काल में लिखे गये, जिनमें केवल परम्परा का पालन ही मात्र नहीं हुआ है। अपितु उनमें नवीनता भी है और नवीन -ष्टिकोण भी।

यात्रा प्रबन्धों एवं स्थानीय देवताओं के वर्णन द्वारा चम्पू काव्यों में नवीन विषयों का साहित्य में समावेश कर उसे जनजीवन के समीप लाने का प्रयास भी किया है।

चम्पू काव्यकार और उनके आश्रय स्थल

चम्पू काव्य के निर्माण में योगदान करने वाले कवि दो प्रकार के हैं –

राज्याश्रित एवं स्वतन्त्र दक्षिण के जिन राज्यों में कवियों को मुख्य रूप से आश्रय प्राप्त हुआ, वे हैं –

1. विजय नगर
2. तंजोर
3. ट्रावनकोर

इन राज्यों के अतिरिक्ति उत्तर भारत के ओरछा राज्य एवं वर्दमान राज्य के नाम भी कतिपय चम्पू काव्यों के साथ संश्लिष्ट है। परवर्ती काल में मैसूर राज्य एवं उनके राजा से सम्बन्धित चम्पू काव्य लिखे गये। दक्षिण भारत के संस्कृत कवियों का तीसरा आश्रय स्थल त्रिवेन्द्रम रहा। नारायण ने संख्या की –ष्टि से सर्वाधिक चम्पू काव्य लिखे हैं। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही केरली में चम्पू काव्यों की रचनाओं की बाढ सी आ गयी थी। राज्य दरबार में सम्मान प्राप्त अनेक कवियों ने चम्पू काव्यों की रचना की कार्तवीर्य प्रबन्ध, स्यानन्दूरपुर चम्पू आदि राजकीय व्यक्तियों की रचनायें हैं, और अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक त्रिवेन्द्रम का क्रम चलता रहा है।'

सन् 887 में लार्ड रिपन ने जब मैसूर के हिन्दू राजा को सौंपा, तब से वह भी संस्कृत के परवर्ती विद्वानों का आश्रय स्थल बना। मैसूर राज्य एवं राजा के अभ्युदय सम्बन्धी जो ऐतिहासिक चम्पू काव्य उपलब्ध हैं, वे इसी काल के बाद के हैं।

दक्षिण भारत के अन्य हिन्दू राजवंश ने भी साहित्य के सृजन तथा सांस्कृतिक विकास को बहुत प्रोत्साहन दिया। चम्पू चरित काव्यों एवं यात्रा प्रबन्धों में इस प्रकार के आश्रयदाताओं का उल्लेख किया गया है। उत्तरी भारत के कतिपय राल्यों का निर्देश भी आवश्यकतानुसार चम्पू काव्यकारों ने किया है। पद्मनाभ मिश्र का सम्बन्ध रीवां नरेश वीरभद्र देव से था। रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने स्वयं दो चम्पू काव्यों की रचना की है।

आनन्दकन्द चम्पू निर्माता मिश्र का सम्बन्ध ओरछा नरेश वीर सिंह देव से था सत्रहवीं अटठारहवीं शताब्दी में उत्तर के शेष हिन्दू राजाओं ने भाषा कवियों को अधिक प्रोत्साहित किया। उत्तरी भारत के संस्कृत कवियों एवं विद्वानों ने चम्पू काव्य निर्माण की ओर कम ध्यान दिया।

इस प्रकार चम्पू काव्य की धारा में राजा, महाराजाओं ने पूर्ण योगदान दिया।

चम्पू काव्यकारों के मुख्य स्थल

चम्पू कवियों का एक बहुत बडा वर्ग विविध मठों एवं मन्दिरों से सम्बन्धित है। कांची श्रीरंग, वेंकटेश, मीनाक्षी एलोरा का कैलाश मन्दिर आदि न केवल चम्पू काव्य के वर्ण्य विषय बने हैं, अपितु इन मठों से सम्बन्धित कवियों ने भी अनेक चम्पू काव्यों की रचना की है।

इस मन्दिरों पर जो पौराणिक गाथायें उत्कीर्ण है पुराणो से वे ही कथायें, चम्पू काव्यों के लिये अधिक गृहीत हुई हैं।

उदाहरण के लिये 'राष्ट्रकूट' राजा कृष्ण द्वारा निर्मित एलोरा के कैलाश मन्दिर में बयालीस पौराणिक गाथायें उत्कीर्ण हैं इनमें नृसिंहावतार, शिव-पार्वती का विवाह आदि की कथायें चम्पू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, इन पर कई चम्पू काव्य लिखे गये हैं।'

सोलहवीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों ने कई चम्पू काव्यों की रचना की। इनमें रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी कविकर्णपूर, रघुनाथदास आदि का उल्लेख किया जा चुका है।

चम्पू काव्यों की परम्परा में दो बातें उल्लेखनीय हैं गुरू-शिष्य परम्परा ने एक ओर चम्पू काव्यों को समृद्ध किया है, तो दूसरी ओर वंश परम्परा में उत्तरोत्तर चम्पू काव्यों की रचना होती गई है। गुरू-शिष्य परम्परा में रामानुजानुयायियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

चम्पू काव्यों का उत्थान एवं ह्रासकाल

1. कालक्रम की -ष्टि से दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवी शताब्दी तक सीमित चम्पू काव्यों की रचना हुई, परन्तु काव्य सौष्ठव की -ष्टि से ये चम्पू अधिक उत्कृष्ट हैं।

2. चम्पू काव्यों का द्वितीय उत्थान काल सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व चरण में माना जा सकता है।

3. इसके बाद का काल चम्पू काव्यों के ह्रास का काल है। द्वितीय उत्थानकाल के प्रेरणास्त्रोत विजय नगर का राज्य दरबार एवं श्रीरंग का मठ रहा है। ह्रासकाल में मैसूर एवं त्रिवेन्द्रम चम्पू काव्यों के निर्माण के केन्द्र रहे हैं।

चम्पू काव्य की विशेषतायें

1. चम्पू काव्य गद्य-पद्यमय होता है।
2. वह उच्छ्वासों में विभाजित होता है।
3. उसमें उक्ति-प्रत्युक्ति नहीं होती है।
4. वह विष्कम्भ शून्य होता है।

संस्कृत साहित्य की अन्य विधाएँ जब शुष्कप्राय हो रही थी तब चम्पूकाव्यों ने संस्कृत-साहित्य की सरल धारा को गतिशील बनाए रखा। संस्कृत-कवियों की उस क्षमता का प्रदर्शन भी किया गया, जो युग-भावना और युग-दर्शन की अभिव्यक्ति देने में सदा समर्थ रही है। रामायण के आधार पर भोज ने 11वीं शती ई. में चम्पू रामायण की और अनन्त भट्ट ने चम्पू भारतम विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया। 11वीं शती में ही भगवत चम्पू की रचना हुई, इसके रचयिता की उपाधि अभिनव कालिदास को दी कवि का नाम अज्ञात है। रामायण एवं महाभारत के आधार पर और भी बहुत से चम्पू काव्य लिखे गये पुराणों के आधार पर भी बहुत से च/म्पू ग्रन्थ बने। 'नृसिंह चम्पू' नामक दो चम्पू ग्रन्थ मिलते है जो कि केशवभट्ट की रचना है इस प्रकार विविध विषयों पर लिखे गये अब तक 74 चम्पू काव्य प्रकाशित उपलब्ध है शेष अप्रकाशित ही है।

महाकवि माघ का सामान्य परिचय (सम्पादन)

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों में माघ का उत्कृष्ट स्थान रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को संस्कृत की वृहत्त्रयी में विशिष्ट स्थान मिला है। महाकवि 'माघ' ने काव्य के के अन्त में प्रशस्ति के रूप में लिए हुए पाँच श्लोकों में अपना स्वल्पपरिचय अंकित कर दिया है जिसके सहारे तथा काव्य में यत्र-तत्र निबद्ध संकेतों से तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर कविवर माघ के जीवन की रूप रेखा अर्थात् उनका जन्म समय, जन्म स्थान तथा उनके राजाश्रय को जाना जा सकता है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने प्रशस्तिरूप में लिखे इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की है। केवल वल्लभदेव कृत व्याख्या ही हमें देखने को मिलती है। इसी प्रकार 15वें सर्ग में प्रथम 39वें श्लोक के पश्चात् द्वयर्थक 34 श्लोक रखे गये हैं। इसके पश्चात् 40वाँ श्लोक है। यहीं से मल्लिनाथ ने उनकी व्याख्या नहीं की है उसी प्रकार प्रशस्ति के पाँच श्लोकों को भी प्रक्षिप्त मानकर मल्लिनाथ ने व्याख्या नहीं की है। किन्तु मल्लिनाथ के पूर्ववर्ती टीकाकार वल्लभदेव ने उन 34 श्लोकों तथा कविवंश वर्णन के पाँच श्लोकों की टीका लिखी है। अतः वल्लभदेव से पूर्ववर्ती होने के कारण यह विश्वास किया जाता है कि कविवंश वर्णन के आदि में जो ''अधुना कविमाघों निजवंशवर्णन चिकीर्षुराहु'' लिखा है, वह सत्य है अर्थात् अन्य द्वारा लिखा हुआ यह कविवंश वर्णन नहीं है।

''कविवंशवर्णन के पाँच श्लोक प्रक्षिप्त हैं'- वह कहना केवल कपोल कल्पना है।

कवि द्वारा लिखे हुए वंश-वर्णन के पाँचवें श्लोक में स्पष्ट लिखा हुआ है कि दत्तक के पुत्र माघ ने सुकवि-कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से 'शिशुपालवधम्' नामक काव्य की रचना की है(1) जिसमें श्रीकृष्ण चरित वर्णित है और प्रतिसर्ग की समाप्ति पर 'श्री' अथवा उसका पर्यायवाची अन्य कोई शब्द अवश्य दिया गया है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि जिस कवि ने 19वें सर्ग के अन्तिम श्लोक (क्र0120) 'चक्रबन्ध' में किसी रूप में बडी ही निपुणता से 'माकाव्यमिदम्' शिशुपालवधम्'' तक अंकित कर दिया है। कविवर माघ का जन्म राजस्थान की इतिहास प्रसिद्ध नगरी 'भीनमाल' में राजा वर्मलात के मन्त्री सुप्रसिद्ध शाक द्वितीय ब्राह्मण सुप्रभदेव के पुत्र कुमुदपण्डित (दत्तक) की धर्म पत्नी ब्राह्मी के गर्भ से माघ की पूर्णिमा को हुआ था। कहा जाता है कि इनके जन्म समय की कुण्डली को देखकर ज्योतिषी ने कहा था कि यह बालक उद्भट विद्वान अत्यन्त विनीत, दयालु, दानी और वैभव सम्पन्न होगा। किन्तु जीवन की अन्तिम अवस्था में यह निर्धन हो जायेगा। यह बालक पूर्ण आयु प्राप्त करके पैरों पर सूजन आते ही दिवंगत हो जायेगा। ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर विश्वास करके उनके पिता कुमुद पण्डित-दत्तक ने जो एक श्रेष्ठी (श्रेष्ठ धनादिकम् अस्ति यस्य, श्रेष्ठ + इनि) (धनी) थे, प्रभूतधनरत्नादि की सम्पत्ति को भूमि को घडों में भर कर गाड दिया जाता था और शेष बचा हुआ धन माघ को दे दिया था। कहा जाता है कि

'शिशुपालवधम्' काव्य के कुछ भाग की रचना इन्होंने परदेश में रहते हुए की थी और शेष भाग की रचना वृद्धावस्था में घर पर रहकर ही की। अन्तिम अवस्था में ये अत्यधिक दरिद्रावस्था में थे। 'भोज-प्रबन्ध' में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती हैं कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे आज वही व्यक्ति दाने-दाने के तरस रहा है। क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्य विचार-चर्चा' में पं0 महाकवि माघ का अधोलिखित पद्य माघ की उक्त दशा का निदर्शक है-

बुभुक्षितैत्यकिरणं न भुज्यते न पीयते काव्यरसः पिपासितेः।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जयन्हिफलः कियाः॥

उक्त वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि दरिद्रता से धैर्यहीन हो जाने के कारण अत्यन्त कातर हुए माघ की यह उक्ति है। कविवर माघ 120 वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करके सन् 880 ई0 के आसपास दिवंगत हुए साथ ही उनकी पत्नी सती हो गई। इनकी अन्तिम क्रिया तक करने वाला कोई व्यक्ति इनके परिवार में नहीं था। 'भोजप्रबन्ध' ''प्रबन्धचिन्तामणि'' तथा ''प्रभावकचरित'' के अनुसार भोज की जीवितावस्था में दिवंगत हुए, क्योंकि भोज ने ही माघ का दाह संस्कार पुत्रवत् किया था।

माघ का स्थिति काल(सम्पादन)

माघ के समय निर्धारण में स्थित काल प्रमाण भी मिलते हैं, जिनकी सहायता से हम उनका समय जान सकते हैं। नवीं शती के आनन्दवर्धन (840 ई0) ने अपने ध्वन्यालोक (2 उद्योत) में माघ के दो पद्यों को उद्धृत किया है। प्रथम पद्य है- 'रम्याइतिप्राप्तवतीः पताकाः' (3153) तथा द्वितीय है- 'त्रासाकुल' परिपतन् परितो निकेतान्।' (5126) इस प्रकार माघ निःसन्देह आनन्दवर्धन (850 ई0) के पूर्ववर्ती हैं।

आनन्दवर्धन द्वारा माघ के श्लोक उद्धृत किए जाने के कारण माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती भी हो सकते है या समकालीन भी हो सकते हैं क्योंकि यशोलिप्सा के कारण माघ स्थिर रूप में किसी एक स्थान पर न रहे पाये हों उन्होंने निश्चित रूप से उत्तर भारत में कश्मीर तक भ्रमण किया था जिसका प्रमाण काव्य के प्रथम सर्ग का नारद मुनि की जटाओं का वर्णन है। यहीं पर सम्भव है ध्वन्यालोक में उद्धृत श्लोकों को किसी काव्योष्ठी में श्री आनन्दवर्धन ने माघ के मुख से सुने हो और वे उत्तम होने के कारण आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उन्हें उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

एक शिलालेख से भी माघ के समय-निर्धारण में सहायता मिलती है। राजा वर्मलात का शिलालेख वसन्त गढ (सिरोही राज्य में) से प्राप्त हुआ। यह शिलालेख शक संवत् 682 का है शक संवत् 682 में 78 वर्ष जब जोड दिए जाते हैं तब ई0 वी0 सन् का ज्ञान होता है इस प्रकार य शिलालेख सन् 760 ई0 का लिखा हुआ होना चाहिए माघ में 20वें सर्ग के अन्त में 'कविवंशवर्णनम्' में लिखा है कि उसके पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मल (वर्मलात) थे अतः सुप्रभदेव का समय 760 ई0 के आसपास होना चाहिए। उनके पौत्र कवि माघ का शैशवकाल सन् 780 के आसपास। इतना तो निश्चित है कि माघ आनन्दवर्धन के पश्चात्वर्ती जिस अतीत के इतिहास को अपने काव्य का कथानक बनाता है, उसी अतीत की अन्य स्थितियाँ भी निम्नांकित करने का भरसक प्रयत्न करता है। किन्तु सूक्ष्म -ष्टि से देखा जाये तो वहाँ भी उसका वर्तमान समाज झाँकता परिलक्षित होता है, क्योंकि उसका अतीत या भविष्य से सम्बद्ध सम्पूर्ण कल्पनाओं का आधार वर्तमान ही रहता है। कवि की कल्पना वर्तमान की नींव पर अतीत तथा भविष्य के प्रसादों का निर्माण किया करती है। इसलिए माघ में अंकित रीतिबद्धता की बढी हुई प्रवृत्ति तथा समाज का शृङ्गारिक वातावरण भी हमें माघ की उक्त तिथि निश्चित करने में सहायक है। संक्षेप में माघ एक ऐसे युग की देन है जिसके प्रमुख लक्षण शृङ्गारिकता, साजबाज के कार्यों में अत्यधिक रूचि और चमत्कार एवं विद्वता प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि है। मदिरा एवं प्रमदा का जो साहचर्य माघ काव्य में देखने को मिलता है वह आठवी से दसवीं शताब्दी के उत्तर भारतीय राजपूत जीवन का इतिहास है।

इस तरह माघ का काल प्रायः 8वीं और 9वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। भोज प्रबन्ध के अनुसार माघ भोज के समकालीन थे, क्योंकि भोज प्रबन्ध में माघ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार माघ ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दानकर दी थी। निर्धन स्थिति में उन्होंने एक श्लोक की रचना की। जिसे उन्होंने राजा भोज के सभा में भेजा था। वह श्लोक इस प्रकार है-

कुमुदवनमपत्रि श्री मदम्भोजखण्डे,
मुदति मुद मूलूकः प्रीतिमाश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलीसतानां ही विचित्रो विपाकः॥''(2)

जब राज सभा में उक्त श्लोक को पढकर सुनाया गया तो भोज अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्होंने माघ की पत्नी को बहुत सा धन देकर विदा किया माघ की पत्नी जब वापस लौट रही थी, तो रास्ते में बालक माघ की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए उससे भी कुछ माँगने लगे। माघ की पत्नी ने सारा धन याचकों में बाँट

दिया। जब पत्नी रिक्तहस्त घर पहुँची तो माघ को चिन्ता हुई कि अब कोई याचक आया तो उसे क्या देंगे ? माघ की यह चिन्ताजनक स्थिति को देखकर किसी याचक ने यह कहा था–

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त

मुद्दामदामविघुराणि च काननानि।

नानानदीनदशतानि च पुरयित्वा।

रित्कोऽसि यåजलद सैव तवोन्तमा श्रीः॥''(3)

डॉ0 कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ नामक स्थान से वर्मलात नामक किसी राजा का 682 विक्रमी अर्थात् 625 ई0 का शिलालेख प्राप्त हुआ था। इसके प्राप्तिकर्ता के अनुसार ये वर्मलात और श्री वर्मल एक ही थे और ये ही माघ के पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता थे। इस –ष्टि से सुप्रभदेव का समय 628 ई0 के आस–पास और उनके पौत्र माघ का अनुमानित समय 650–757 वि0सं0 से 757 वि0 सं0 (700) के बीच हो सकता है।''(4) अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर प्रभूत अन्वेषण एवं विचार किया है तदानुसार इनका स्थिति–काल शातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में माना जाना चाहिए। इसके मत के प्रत्यायक कुछ वाह्य प्रमाणों का सारांश इस प्रकार है–

1. आनन्दवर्धन (850 ई0) ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में शिशुपालवधम् के दो श्लोक उद्धृत किए है।(5)
2. शिशुपालवध (1992) का एक पद्य,(6) जिसमें माघ ने श्लेष द्वारा राजनीति की तुलना व्याकरणशास्त्र से की है स्पष्टरूप से व्याख्या के दो प्रथित ग्रन्थों, वृत्ति (काशिकावृत्ति) 650 ई0 और 'न्यास' (सम्भवतः जिनेन्द्रबुद्धिविरचित 'न्यास' या 'विवरण–पिåजका' समय 700 ई0) का संकेत करता है। इस मत की पुष्टि में एम0 एस0 भण्डार ने कुछ अन्य प्रमाण भी उपस्थित किए है। उनका मत है माघ अपने काव्य के अनेक श्लोकों में न्यासकार (जिनेन्द्रबुद्धि) के ही विचारों को प्रकट करते प्रतीत होते है। नीचे उद्धृत किए जा रहे न्यासकार के इन वाक्यों की छाया शिशुपालवधम् के एक श्लोक में मिलता है। दोनों तुलनीय प्रसंग इस प्रकार है–

परितो व्यापृता परिभाषा। न्यास (2/9/9)

परिभाषात्वेकदेशस्थाऽपि सर्वत्तशास्त्रे व्याप्रियते। शिशुपालवध (9/6/80)

परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्व विषयं प्राप्तवर्ती गता प्रतिष्ठाना न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित

परिभोषव गरीयसी यदाज्ञा(7)